ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2023; 9(11): 110-112
www.allresearchjournal.com
Received: 01-08-2023
Accepted: 15-09-2023

अमित कुमार,
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत

कृष्ण कुमार शर्मा
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, भादरा, जिला हनुमानगढ़, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
अमित कुमार,
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत

वैदिक चिंतन में प्रकृति–मानव संबंध

अमित कुमार, कृष्ण कुमार शर्मा

सारांश
आज 'कंकरीट के जंगलों' पर विराजमान मानव के प्रकृति के साथ संबंध असंतुलित हो गये हैं, जिनमें पुनः संतुलन स्थापित करना, इस पर चिंतन करना तथा पृथ्वी के सौन्दर्य को बनाये रखना नितांत आवश्यक है। भारतीय चिंतन मनुष्य को प्रकृति या जगत् की वृहत्तर योजना का एक भाग मानते हुए मानव–प्रकृति सहकार और सह–अस्तित्व पर बल देता है। जगत् का अस्तित्व प्राकृतिक शक्तियों और प्राणियों की सहजीविता के सिद्धांत पर ही टिका हुआ है। इसी के अनरूप यहाँ मनुष्य ने प्रारंभ से ही पर्यावरण एवं इसके तत्त्वों की महत्ता को जानकर प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य बनाये रखा। वैदिक साहित्य में प्रकृति–मानव संबंधों का विशद विवेचन मिलता है। *ऋग्वेद* से प्रारंभ करके पश्चात्वर्ती वेद संहिताओं, यथा *यजुर्वेद, सामवेद* एवं *अथर्ववेद* और इनसे संबंधित ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रंथों में मानव और प्रकृति, मानव और पृथ्वी के अन्यान्योश्रित संबंधों पर आधारित अनेक उद्धरण मिल जाते हैं। वैदिक चिंतन में पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन का व्यापक दृष्टिकोण निहित है और प्राकृतिक तत्त्वों के लिये यत्र–तत्र कल्याणकारी एवं संरक्षणकारी भाव परिलक्षित होते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से अनुप्राणित वैदिक दर्शन प्रकृति के कण–कण के साथ आत्मीय संबंधों का पोषक रहा है। संक्षेप में, मनुष्य और प्राकृतिक तत्त्वों में साहचर्य का विलक्षण भाव वैदिक वाङ्मय का सार है। आज जब वैश्विक संदर्भ में व्यक्तिवादी मूल्यों पर आधारित भौतिकवादी–भोगवादी संस्कृति से पारिस्थितिक संतुलन चरमराने लगा है और जैव विविधता के लिये खतरा उत्पन्न हो गया, तो ऐसे में वैदिक चिंतन में अभिव्यक्त प्रकृति–मानव के पारस्परिक प्रगाढ़ संबंधों, प्रकृति की मातृरूपेण छवि एवं प्राकृतिक तत्त्वों हेतु संरक्षणकारी दृष्टिकोण पर मंथन करने और इसे व्यावहारिक जीवन में आत्मसात् करने से पर्यावरण संकट के निवारण के लिये सकारात्मक दृष्टि प्राप्त होगी तथा मानव जाति अपने वास्तविक हितों की ओर अग्रसर हो सकेगी।

कूटशब्दः वैदिक चिंतन, प्रकृति, भारतीय चिंतन, प्राकृतिक शक्तियाँ, सहजीविता का सिद्धांत, पर्यावरण, पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन, प्राकृतिक तत्त्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, वैदिक दर्शन, वैदिक वाङ्मय, व्यक्तिवादी मूल्य, भौतिकवादी–भोगवादी संस्कृति, जैव विविधता, संरक्षणकारी दृष्टिकोण, पर्यावरण संकट, आधुनिक मानव, 'तथाकथित' विकास, प्रकृति की अनुमत्य सीमा, प्राकृतिक संसाधन, सभ्यता, ऋत, द्यावा–पृथिवी, खनन, प्रदूषित, हिमावरित पर्वत।

प्रस्तावना
आधुनिक मानव की 'तथाकथित' विकास की लालसा ने प्रकृति की अनुमत्य सीमा को लाँघकर प्राकृतिक संसाधनों का निरंतर अविवेकपूर्ण दोहन किया है, जिसके परिणामस्वरूप हम पर्यावरण संकट के भयावह दौर से गुजर रहे हैं। हमारी अदूरदर्शिता ने जीव–जगत् और भावी पीढियों को संकट में डाल दिया है। वस्तुतः स्वयं जीवनदायिनी पृथ्वी के अस्तित्व के समक्ष ही चुनौती खड़ी हो गयी है। आज 'कंकरीट के जंगलों' पर विराजमान मानव के प्रकृति के साथ संबंध असंतुलित हो गये हैं, जिनमें पुनः संतुलन स्थापित करना, इस पर चिंतन करना तथा पृथ्वी के सौन्दर्य को बनाये रखना नितांत आवश्यक है।

विवेचन
मानव जीवन और प्रकृति के मध्य का संबंध सभ्यता के विकास के प्रारंभ से ही दार्शनिक चिंतन का प्रमुख विषय रहा है[1]। उक्त कथन भारतीय संदर्भ में भी युक्तियुक्त है। भारतीय चिंतन ''शाश्वतम्, प्रकृति–मानव–सङ्गतम्, सङ्गतं खलु शाश्वतम्'' अर्थात् प्रकृति और मानव के पारस्परिक संबंध शाश्वत हैं; रिश्ता शाश्वत है जैसे भावों से परिपूर्ण है तथा मनुष्य को प्रकृति या जगत् की वृहत्तर योजना का एक भाग मानते हुए मानव–प्रकृति सहकार और सह–अस्तित्व पर बल देता है। जगत् का अस्तित्व प्राकृतिक शक्तियों और प्राणियों की सहजीविता के सिद्धांत पर ही टिका हुआ है।

इसी के अनरूप यहाँ मनुष्य ने प्रारंभ से ही पर्यावरण एवं इसके तत्त्वों की महत्ता को जानकर प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य बनाये रखा।[2]

यदि हम वैदिक साहित्य पर दृष्टिपात करें तो इसमें प्रकृति–मानव संबंधों का विशद विवेचन मिलता है। *ऋग्वेद* से प्रारंभ करके पश्चात्वर्ती वेद संहिताओं, यथा *यजुर्वेद*, *सामवेद* एवं *अथर्ववेद* और इनसे संबंधित ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रंथों में मानव और प्रकृति, मानव और पृथ्वी के अन्यान्योश्रित संबंधों पर आधारित अनेक उद्धरण मिल जाते हैं। वैदिक कवि प्रकृति की अनुकूलता में ही सुख और समृद्धि का आधार मानते हैं, इसलिये *अथर्ववेद* में भूमि को माता, अंतरिक्ष को भ्राता और द्युलोक को पिता समान मानकर मानव और प्रकृति के मध्य प्रगाढ़ संबंधों को दर्शाया गया है[3]। वैदिक चिंतन में पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन का व्यापक दृष्टिकोण निहित है और प्राकृतिक तत्त्वों के लिये यत्र–तत्र कल्याणकारी एवं संरक्षणकारी भाव परिलक्षित होते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[4] की भावना से अनुप्राणित वैदिक दर्शन प्रकृति के कण–कण के साथ आत्मीय संबंधों का पोषक रहा है।

वैदिक मतानुसार विश्व ऋत अर्थात् प्राकृतिक व्यवस्था के नियमांतर्गत बंधा हुआ है। प्रकृतिगत दैवीय शक्तियों के व्रत अर्थात् नियम सर्वोपरि एवं अटल हैं। विवेकी या अविवेकी जन, द्यावा–पृथिवी और द्रोह–रहित उपदेशक किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह इनका उल्लंघन कर सके। दृढ़ पर्वत भी इन्हें नहीं झुका सकते। अतः मनुष्य से यह अपेक्षा की गयी है कि वह प्रकृतिगत दैवी नियमों को जानकर उनके अनुरूप आचरण करे तथा प्रकृति के दिव्य संतुलन को न बिगाड़े –

''न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः।।''[5]

वेदों में लोकरक्षण के लिये प्रकृति की रक्षा करने का आह्वान किया गया है –

'रक्षायै प्रकृतिं पातु लोक'।

जो द्यावा–पृथिवी हमारी रक्षा करते हैं, उनके रक्षण की कामना की गयी है –

'अवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी'[6]।

पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि हम प्रकृति से जितना लें, उतना ही उसे लौटायें। इसी दृष्टि से वैदिक साहित्य में 'जो त्याग करते हैं वे ही भोग पाते हैं, किसी वस्तु का लोभ मत करो' का आदर्श प्रस्तुत किया गया है –

''तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।''[7]

अथर्ववेद के भूमि एवं पृथिवी सूक्त की गणना भूमि के प्रति प्रेम प्रदर्शन के कारण की जाती है। मानव–प्रकृति के पारस्परिक आत्मीय संबंधों से सराबोर ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''[8] का भाव यह इंगित करता है कि मनुष्य का संपूर्ण जीवन पृथ्वी के संसाधनों पर निर्भर है। चूँकि पृथ्वी और जल (नदियों) दोनों से वनस्पतियों एवं पशुओं का संपोषण होता था, इसीलिये इन्हें माता का दर्ज़ा दिया गया[9]। एक अन्य मंत्र में पृथ्वी को सबका भरण–पोषण करने वाली, धन की खान, सबकी प्रतिष्ठा, जीवन का आधार, सुवर्ण से युक्त तथा जगत् को धारण करने वाली कहा गया है –

''विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु।।''[10]

हिरण्यवक्षा पृथ्वी को नमन करते हुए भूमि के विवेकपूर्ण दोहन करने के निर्देश दिये गये हैं –

''शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।।''[11]

मनुष्य को निर्देश दिये गये हैं कि जब वह भूमि के खननादि से खनिज, वनस्पति, अन्न इत्यादि पदार्थ प्राप्त करने का प्रयास करे तो इसकी क्षतिपूर्ति भी आवश्यक रूप से करे। इससे पृथ्वी के मर्म स्थलों पर आघात न हो तथा भूमि की उर्वरता को नुकसान न पहुँचे –

''यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।''[12]

प्रकृति में अनेक संसाधन ऐसे हैं, जिन्हें एक बार उपयोग में लेने के पश्चात् उनका पुनर्स्थापन संभव नहीं है, अतः उनका संरक्षण परमावश्यक है। ऋग्वेद में स्पष्टरूपेण कहा गया है कि यह द्यौ, भूमि, अंतरिक्ष में उत्पन्न होने वाली सृष्टियाँ, जल इत्यादि एक बार ही उत्पन्न होता है, बारम्बार नहीं –

''सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते।।''[13]

पृथ्वी को जगत् की रक्षिका तथा वनस्पतियों एवं औषधियों को धारण करने वाली कहा गया है। साथ ही, मनुष्य को आगाह भी किया गया है कि जो पृथ्वी को क्षति पहुँचाते हैं, प्रदूषित करते हैं, पृथ्वी उन्हें उसी प्रकार दण्डित करती है, जैसे अश्व धूल को झाड़कर दूर छिटक देता है –

''अश्वं इव रजो दुधुवे वि ताञ्जनान्य आक्षियन्पृथिवीं
यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम्।।''[14]

इसी प्रकार मनुष्य को पृथ्वी को पुष्ट करने, इसकी उर्वरता बढ़ाने परंतु इसे हिंसित–प्रदूषित न करने, इसको विनष्ट न करने का संदेश दिया गया है –

''पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मोऽहं त्वाम्''।[15]
''पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः''।[16]

विश्वमंगलकामना के निमित्त द्यावा–पृथिवी, अंतरिक्ष, औषधियों एवं वनों में विद्यमान वृक्षों तथा सूर्य, चारों दिशाओं, पर्वतों, समुद्रों एवं जल के मनुष्य के लिये सुखकर होने की प्रार्थना की गयी है –

''शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृश्ये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वविनो भवन्तु श नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।''[17]

''शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः।।''[18]

इसी प्रकार पृथ्वी से यह कामना की गयी है कि उसकी पहाड़ियाँ, हिमावरित पर्वत एवं वन मनुष्य के लिये कल्याणकारी होवें –

'गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु'[19]।

निष्कर्ष

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य और प्राकृतिक तत्त्वों में साहचर्य का विलक्षण भाव वैदिक वाङ्मय का सार है। वेदों में चित्रित मानव समाज प्रकृति और अन्य प्राणियों के साथ समरसता के साथ आत्मस्थ होकर जैव–अजैव में दिव्यत्व की तलाश करता है। आज जब वैश्विक संदर्भ में व्यक्तिवादी मूल्यों पर आधारित भौतिकवादी–भोगवादी संस्कृति से पारिस्थितिक संतुलन चरमराने लगा है और जैव विविधता के लिये खतरा उत्पन्न हो गया, तो ऐसे में वैदिक चिंतन में अभिव्यक्त प्रकृति–मानव के पारस्परिक प्रगाढ़ संबंधों, प्रकृति की मातृरूपेण छवि एवं प्राकृतिक तत्त्वों हेतु संरक्षणकारी दृष्टिकोण पर मंथन करने और इसे व्यावहारिक जीवन में आत्मसात् करने से पर्यावरण संकट के निवारण के लिये सकारात्मक दृष्टि प्राप्त होगी तथा मानव जाति अपने वास्तविक हितों की ओर अग्रसर हो सकेगी।

संदर्भ

1. रमेश दत्त दीक्षित – भौगोलिक चिंतन का विकासः एक ऐतिहासिक समीक्षा, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, छठा मुद्रण, अगस्त, 2013, पृ. 260.
2. अमित कुमार एवं दुर्गा दत्त शर्मा – ''वैदिक चिंतन में वन संरक्षण एवं संवर्धन'', आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्यमैनिटीज एंड सोशल साइंस, वो. 24, इश्यू 5, सि. 1, मई 2019, पृ. 81.
3. नवज्योत भनोत – पारिस्थितिक असंतुलन के संदर्भ में हिंदी की प्रकृतिपरक कविता, अक्षय प्रकाशन, जयपुर, 2017, पृ. 22.
4. महोपनिषद् 4/71
5. 5 ऋग्वेद 3/56/1
6. यजुर्वेद 2/9
7. यजुर्वेद 40/1 (ईशावास्योपनिषद् 1/1)
8. अथर्ववेद 12/1/12
9. रामशरण शर्मा – प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम ओरियंट ब्लैकस्वॉन संस्करण–2009, पुनर्मुद्रण–2022, पृ. 44.
10. अथर्ववेद 12/1/6
11. अथर्ववेद 12/1/26
12. अथर्ववेद 12/1/35
13. ऋग्वेद 6/48/22
14. अथर्ववेद 12/1/57
15. यजुर्वेद 10/23
16. यजुर्वेद 13/18
17. ऋग्वेद 7/35/5
18. ऋग्वेद 7/35/8
19. अथर्ववेद 12/1/11